बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 82

अलग-थलग भारत

ई-कॉमर्स और डिजिटल कारोबार आने वाले दिनों में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के लिए सबसे बड़े मूल्यवर्धक साबित होने वाले हैं। यह बात भारतीय अर्थव्यवस्था पर खासतौर पर लागू होती है।

तथ्य तो यह है कि भारत में हाल में जो भी निवेश हुआ है वह इसी या इससे संबद्ध क्षेत्र में हुआ है। भारत सरकार भी इस क्षेत्र को लेकर नए नियम और मसौदे बना रही है। इनमें से कई नियम कायदों ने विदेशी कारोबारियों को गहरे तक निराश किया है। परंतु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ई-कॉमर्स और डिजिटल कारोबार के नियमन के मामले में भारत वैश्विक स्तर पर अलग-थलग पड़ता जा रहा है। खासतौर पर ई-कॉमर्स और डिजिटल कारोबार के अंतरराष्ट्रीय नियमन के संचालन को लेकर बहुपक्षीय व्यवस्था कायम करने का प्रयास चल रहा है।

अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान के रूप में चार में से तीन बड़े कारोबारी देश बीते वर्ष के दौरान एक से अधिक अवसरों पर साथ आए और उन्होंने कहा कि वे ऐसी व्यवस्था कायम करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। वे साथ मिलकर ऐसे घरेलू नियमन से बचाव चाहते हैं जो डेटा के सीमा पार अबाध संचार को रोकते हों। घरेलू सरकार को सॉफ्टवेयर और सोर्स कोड आदि को लेकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को परेशान करने से रोकने की बात पर भी वे एकमत हैं।

चीन ने भी डेटा प्रवाह और भंडारण को लेकर होने वाले विश्व व्यापार संगठन समझौते में बहुपक्षीय चर्चा को लेकर खुलापन दर्शाया है। वह डिजिटल सेवाओं और उत्पादों के मामले में भी चर्चा में शामिल होना चाहता है। चीन पश्चिमी देशों की तुलना में अधिक संरक्षणवादी है लेकिन वह वैश्विक व्यापार नियम ऐसे चाहेगा जहां अलीबाबा अथवा टेनसेंट जैसे उसके बहुराष्ट्रीय उपक्रम फले फूलें।

भारत ई-कॉमर्स या डिजिटल कारोबार के क्षेत्र में किसी भी अंतरराष्ट्रीय ढांचे को रोकना चाहता है। डेटा स्थानीयकरण जैसे उसके हालिया कदम यही बताते हैं। इसके चलते भारतीय उपभोक्ताओं के डेटा का मुक्त प्रवाह प्रभावित होगा। ई-कॉमर्स जगत में काम कर रही बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर भी कई तरह के प्रतिबंध लगाए गए हैं। उन पर मनमाने नियम थोपे गए हैं। ऐसे ही एक नियम के चलते हाल में अमेरिका और भारत के कारोबारी रिश्तों में खिंचाव आया। भारत यह सुनिश्चित करना चाहता है कि उसकी आईटी सेवा क्षेत्र की जरूरत पूरी हो। बहरहाल अभी यह स्पष्ट नहीं है कि भारतीय आईटी कंपनियों की सेवाओं को वैश्विक ढांचे के समक्ष खुलेपन से लाभ होगा या नुकसान होगा।

आखिरकार भारतीय कंपनियां इस क्षेत्र में कम लागत वाला प्रतिस्पर्धी हल मुहैया कराती हैं। डेटा स्थानीयकरण का सवाल और चिंतित करने वाला है। तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद उसे घरेलू स्तर पर हल नहीं किया जा सका। बड़ी भारतीय कंपनियों को डेटा संरक्षण से लाभ हो सकता है और राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर सरकार के सवाल पूरी तरह वैध हैं। परंतु डेटा के प्रवाह से भारतीय उपभोक्ताओं और छोटी कंपनियों तथा स्टार्टअप को भारी लाभ होना भी तय था।

चाहे जो भी हो भारत के लिए खुद को इस तरह अलग-थलग करना सही नहीं होगा। अगर भारत को छोड़कर कोई समझौता होता है तो यह हमारे लिए कतई लाभकारी नहीं होगा। ऐसे में यह आवश्यक है कि अपने नजरिये की पुष्टि के लिए सहयोगी तलाश किए जाएं। दुर्भाग्यवश इन मसलों पर तमाम अल्पविकसित देशों समेत कई देशों का नजरिया भारत की तरह सख्त नहीं है। ऐसे में आगे की राह थोड़ा समझौतापरक सोच अपनाने से ही निकलेगी।

विनय सिन्हा

रोजगार का सवाल और राजनीति का हाल

आर्थिक परिणाम हमारी राजनीति को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, इस विषय में हमारी पारंपरिक समझ का परीक्षण 23 मई को हो रहा है। विस्तार से बता रहे हैं **मिहिर शर्मा**

पिछले कुछ आम चुनावों की बात करें तो हर बार उनकी व्याख्या किन्हीं आर्थिक कारकों पर की गई। सन 2004 में जब इंडिया शाइनिंग अभियान के बावजूद अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार दोबारा नहीं चुनी गई तो अधिकांश लोगों का मानना था कि ऐसा ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त निराशा की वजह से हुआ। उस दौरान पांच वर्ष में दो बार मॉनसून नाकाम रहा था। उनके कार्यकाल में मुद्रास्फीति भी अपेक्षाकृत कमजोर थी।

उसके बाद 2009 में जब मनमोहन सिंह की सरकार दोबारा चुनी गई तब इसके लिए संप्रग सरकार के पहले कार्यकाल में आई तेज वृद्धि को श्रेय दिया गया। 2014 में जब संप्रग की दूसरी सरकार की पराजय हुई तो कई लोगों ने कहा कि वर्ष 2011 के बाद आर्थिक वृद्धि में आया धीमापन इसकी वजह रहा। हालांकि सरकार के कार्यकाल के अंतिम वर्ष में चक्रीय सुधार की शुरुआत हो चुकी थी।

गुरुवार को आने वाले आम चुनाव के नतीजों को तय करने वाले कौन से आर्थिक कारक हो सकते हैं? नतीजों के बाद काफी कुछ कहा जाएगा लेकिन बेहतर होगा कि हम कुछ परिकल्पना प्रस्तुत करें और देखें कि वह किस कदर सटीक बैठती है?

पहला, भारतीय चुनावों के बारे में मान्यता है कि वे महंगाई से प्रभावित होते हैं। तमाम सर्वेक्षण कहते हैं कि मतदाता इसे लेकर चिंतित हैं। संप्रग की दूसरी सरकार को महंगाई से जूझना पड़ा था। इसके लिए एक हद तक ईंधन कीमतें भी उत्तरदायी थीं। परंतु दूसरी ओर वाजपेयी की राजग सरकार ने इस मोर्चे पर बेहतर प्रदर्शन किया फिर भी हार गई। यानी यहां मामला मिलाजुला है। मौजूदा सरकार की बात करें तो वह मुद्रास्फीति को लेकर सतर्क भी रही और भाग्यशाली भी। भाग्यशाली इस लिहाज से कि कच्चे तेल की कीमतें इस सरकार के कार्यकाल में तेजी से घटीं। इससे मुद्रास्फीति का दबाव घटा और सरकारी व्यय की भरपाई बिना घाटे में ज्यादा इजाफा किए की जा सकी। सतर्क इसलिए क्योंकि कृषि संकट के बावजूद सरकार द्वारा निर्धारित होने वाले कृषि मूल्य में ज्यादा इजाफा नहीं किया गया। अगर ऐसा होता तो यह मुद्रास्फीति की राजनीति एक और प्रमाण बनता।

दूसरा, यह धारणा कि किसानों की मदद ग्रामीण वोट जुटाने में सहायता करती है। इस बात के मजबूत प्रमाण कभी नहीं रहे कि ग्रामीण वोटों में बदलाव की वजह से वाजपेयी की सरकार दोबारा नहीं आ सकी। किसान शब्द मौजूदा प्रधानमंत्री के चुनावी भाषणों में भी बार-बार आया है लेकिन इसके बावजूद कृषि संकट के पर्याप्त संकेत देखने को मिले हैं। महाराष्ट्र में किसानों ने कई बार शहरों की ओर मार्च किया। सब्जियों की कीमतें अक्सर काफी कम रही हैं। मोदी के कार्यकाल के आरंभ में मॉनसून कमजोर रहा। किसानों को उपज की लागत से 50 फीसदी अधिक भुगतान का लक्ष्य पूरी तरह हासिल नहीं हो सका। गोसंरक्षण नीतियों ने किसानों की उपज और आय सुरक्षा को प्रभावित किया। आंकड़े बताते हैं कि ग्रामीण भुगतान मोदी के कार्यकाल के अधिकांश वक्त ठहरा रहा। न्यूनतम समर्थन मूल्य में मामूली इजाफा देखने को मिला। सरकार ने कार्यकाल के अंत में अंतरिम बजट में किसानों के लिए आय समर्थन की घोषणा की लेकिन यह राशि बहुत ज्यादा नहीं है। अगर इसके बावजूद मोदी सरकार को कृषि संकट वाले क्षेत्रों मसलन महाराष्ट्र या मध्य प्रदेश के के हिस्सों में मजबूत समर्थन मिलता है तो यह कहना सही नहीं होगा कि देश की राजनीति में किसानों या कृषि समर्थन मानीखेज है।

तीसरा, जीडीपी वृद्धि भी बहुत मायने रखती है और 2009 में संप्रग के दोबारा चुने जाने और 2014 में सत्ता से बाहर जाने के लिए यह जिम्मेदार रही। दुर्भाग्यवश चुनाव इस बारे में कोई खास जानकारी नहीं देते क्योंकि मौजूदा जीडीपी आंकड़ों को अब गंभीरता से नहीं लिया जाता। ये पहले के आंकड़ों से तुलना लायक भी नहीं हैं। अन्य उच्च फ्रीक्वेंसी आंकड़ों की बात करें तो वे प्राय: जीडीपी के अनुरूप होते हैं। उनके मुताबिक देश में मंदी की स्थिति है। ऐसे में लगता नहीं कि 23 मई को पिछली सरकार का दोबारा चुना जाना इस बात का परिचायक होगा कि जीडीपी वृद्धि राजनीतिक जय-पराजय से संबद्ध है।

चौथा, रोजगार निर्माण भी सरकार के प्रदर्शन को देखने की एक दृष्टि देता है। विपक्षी कांग्रेस तो यही मानती रही है। उसने रोजगार निर्माण पर मोदी के प्रदर्शन पर लगातार हमला किया। इस मोर्चे पर सरकार का प्रदर्शन निराश करने वाला रहा है। एनएसएसओ के लीक हुए आंकड़े यह बताते हैं। ध्यान रहे रोजगार पर यह जोर हमारी राजनीति में नया है। यह शायद उत्तर भारत के जनांकीय ढांचे की वजह से है जहां बहुत बड़ी तादाद में युवा हैं। निजी क्षेत्र के विकास, रोजगार के विस्तार और श्रम आधारित उत्पादन में कमी ने इसे जन्म दिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो युवा, शहरी और आकांक्षी मतदाता के लिए रोजगार की चिंता राजनीतिक मुद्दा है। अगर मोदी 2014 की तरह इस मतदाता वर्ग का समर्थन पाते हैं तो यह कहना भी मुश्किल हो जाएगा कि रोजगार चुनाव में कोई मुद्दा है। ऐसे में अगर भविष्य के नेता रोजगारपरक नीति में निवेश करते भी हैं तो यह उनकी प्राथमिकता नहीं होगी।

कुल मिलाकर अगर मौजूदा सरकार मजबूती से वापसी करती है तो महंगाई को छोड़ राजनीति के ये चारों आर्थिक सिद्धांत खारिज हो जाएंगे। मोदी के कमजोर प्रदर्शन का विपरीत असर होगा।

माना तो यह भी जाता है कि कई चुनाव आर्थिक मसलों पर नहीं भी लड़े जाते। हालांकि देखा जाए तो ऐसा लगता नहीं। खासकर अगर मोदी 2014 की तरह ही भारी जीत दर्ज करते हैं, जबकि वह चुनाव संप्रग सरकार के आर्थिक प्रदर्शन को आधार बनाकर हुआ था। भले ही आर्थिक अखबारों में लिखने वाले मुझ जैसे स्तंभकार चाहे जो मानते रहे हों। छिपा हुआ सामाजिक संघटन और ध्रुवीकरण अधिक अहम राजनीतिक कारक हैं और यह अब खुलकर सामने आ रहा है। जो मतदाता कह रहे हैं कि हमें भले ही मोदी से कोई फायदा नहीं हुआ लेकिन वह देश के लिए अच्छे हैं, उनकी यही सच्चाई है। शायद अब यह धारणा त्याग देनी चाहिए कि आर्थिक कारक देश में राजनीति के अहम निर्धारक होते हैं। यकीनन यह सच है कि राजनीति आर्थिक नतीजों का अहम कारक है। दुर्भाग्य की बात है कि यह एकतरफा रास्ता राजनेताओं की आर्थिक नीति चयन की दृष्टि से सही नहीं।

समाचार चैनलों के दर्शकों और राजस्व की खातिर बदलाव जरूरी

मीडिया मंत्र

वनिता कोहली-खांडेकर

खेल चैनलों के लिए इंडियन प्रीमियर लीग यानी आईपीएल की वही अहमियत है जो न्यूज चैनलों के लिए चुनावों की है। चुनावों के दौरान न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या में भारी इजाफा होता है। अमूमन इन चैनलों में दर्शकों की संख्या तब बढ़ती है जब कोई हमला होता है या कहीं बम की खबर उड़ती है। लेकिन इन दो कारणों से हमेशा कमाई नहीं की जा सकती है। पहला यह कि आप इनका अनुमान नहीं लगा सकते हैं। दूसरा कारण यह कि विज्ञापन का समय बढ़ाने या राजस्व बढ़ाने की किसी और कोशिश से दर्शक चैनल से दूर हो सकते हैं। लेकिन चुनाव के दौरान बेहतर दरों और कमाई के लिए बेहतर योजना बनाई जा सकती है।

गुरुवार तक हमें देश में हाल में संपन्न हुए आम चुनावों का नतीजा पता चल जाएगा। साथ ही यह पता भी चलेगा कि मतगणना के दिन न्यूज चैनलों पर दर्शकों की संख्या कितनी रही। न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या और चुनावों में क्या संबंध है, इसका पता लगाने के लिए बिज़नेस स्टैंडर्ड ने ब्रॉडकास्ट ऑडियंस रिसर्च काउंसिल यानी बार्क की मदद ली। उसने गुजरात और उत्तर प्रदेश में 2017 और मिजोरम, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और तेलंगाना में पिछले साल हुए विधानसभा चुनावों की मतगणना के दिन न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या पर नजर डाली। राजस्थान और छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में हुए विधानसभा चुनावों की मतगणना मंगलवार को हुई थी। इससे पहले के चार मंगलवार हिंदी चैनलों के दर्शकों की औसत संख्या 10.3 करोड़ थी जो मतगणना के दिन 40.3 करोड़ पहुंच गई। दूसरी ओर अंग्रेजी न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या 4 लाख से बढ़कर 14 लाख पहुंच गई। कुल मिलाकर हिंदी और अंग्रेजी के न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या में दो से छह गुना तक बढ़ोतरी हुई जबकि क्षेत्रीय चैनलों के दर्शकों की संख्या में पांच से 10 फीसदी उछाल आई।

वर्ष 2012 में तत्कालीन रेटिंग्स एजेंसी टीएएम मीडिया रिसर्च के मुताबिक 1999 से 2009 के दौरान चुनावों की तुलना में दूसरी घटनाओं ने न्यूज चैनलों पर ज्यादा दर्शक बटोरे। 2004 के लोक सभा चुनावों में न्यूज दर्शकों की संख्या में 10 फीसदी और 2009 में आठ फीसदी की बढ़ोतरी हुई। लेकिन प्राकृतिक आपदाओं और मुंबई में हुए आंतकवादी हमलों के दौरान न्यूज चैनलों की संख्या में इससे कहीं ज्यादा इजाफा हुआ था। मुंबई हमलों के दौरान न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या टेलीविजन के कुल दर्शकों की संख्या का 18 फीसदी पहुंच गई थी।

> आज न्यूज चैनल स्टार एंकर और चीखने-चिल्लाने वालों पर ज्यादा निर्भर हैं। इस तरह की पत्रकारिता का नतीजा यह हुआ कि गुणवत्ता में गिरावट आई और ध्रुवीकरण बढ़ गया। किसी खास सोच को आगे बढ़ाने के लिए फर्जी तथ्यों का सहारा लेने से दर्शकों की संख्या तेजी से बढ़ती है और राजस्व भी बढ़ता है।

लेकिन न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या केवल कुछ ही घटनाओं के दौरान बढ़ी। 2018 के अंत तक पिछले दस वर्षों के दौरान न्यूज दर्शकों की संख्या ठहरी हुई है। टेलीविजन के कुल दर्शकों की संख्या में न्यूज चैनलों के दर्शकों की हिस्सेदारी छह से आठ फीसदी के बीच झूल रही है। 2018 में यह 7.2 फीसदी थी। अमूमन विज्ञापन और भुगतान राजस्व का सीधा संबंध दर्शकों की संख्या से होता है। इसलिए आश्चर्य नहीं है कि खबरों का प्रसारण अब भी घाटे का सौदा है। 74,000 करोड़ रुपये के भारतीय प्रसारण उद्योग में इसकी हिस्सेदारी महज 3,000 करोड़ रुपये की है।

अब मैं इस सारे विश्लेषण के असली बिंदु पर आती हूं। यह बात सही है कि चुनावों के दौरान न्यूज चैनलों के दर्शकों की संख्या में थोड़ा बहुत बढ़ोतरी होती है लेकिन इसे बरकरार रखने के लिए बहुत कुछ करने की जरूरत है। इसके लिए ठोस जमीनी रिपोर्टिंग, शानदार कवरेज और पत्रकारिता में भारी निवेश चाहिए। पिछले एक दशक में किसी भी न्यूज चैनल ने ऐसा नहीं किया। इसके उलट उन्होंने संवाददाताओं, रिपोर्टिंग और जमीनी पत्रकारिता में कटौती की है। आज न्यूज चैनल स्टार एंकर और चीखने-चिल्लाने वालों पर ज्यादा निर्भर हैं। इस तरह की पत्रकारिता का नतीजा यह हुआ कि गुणवत्ता में गिरावट आई और ध्रुवीकरण बढ़ गया। किसी खास सोच को आगे बढ़ाने के लिए फर्जी तथ्यों का सहारा लेने से दर्शकों की संख्या तेजी से बढ़ती है और राजस्व भी बढ़ता है। कल्पना करें कि किसी फिल्म में केवल आइटम सॉन्ग हों तो दर्शकों को क्या हासिल होगा। देश के 400 न्यूज चैनलों में से अधिकांश का यही हाल है।

मनोरंजन या फिल्मी चैनलों के साथ संवाद से इसमें मदद मिल सकती है। ज्यादा दर्शक खींचना अच्छी बात है लेकिन दर्शकों का स्तर बरकरार रखने के लिए आपको जरूरी कार्यक्रमों की जरूरत होती है। मनोरंजन चैनलों में धारावाहिकों से दर्शकों की संख्या बरकरार रहती है जबकि रियल्टी शो या खास इवेंट से इसमें तेजी आती है। फिल्मी चैनलों में सूर्यवंशम जैसी पुरानी फिल्में यह काम करती हैं। इससे चैनलों की कमाई होती रहती है जबकि दंगल या सुल्तान जैसी ब्लॉकबस्टर फिल्मों से इसमें तेजी आती है।

अगर आप डर या भय वाले कार्यक्रम दिखाकर हर रात दर्शकों को अपनी तरफ खींचते हैं तो आप ऐसे मॉडल में निवेश कर रहे हैं जिसमें आपका रिटर्न घटता जाएगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि देश में दर्जनों अच्छे अखबार हैं और अब तो कम से कम आधा दर्जन ऐसी न्यूज साइट आ गई हैं जो खबरें देती हैं। न्यूज चैनल तो बहुत पहले ही खबर देना भूल गए हैं।

कानाफूसी

किसके सर सेहरा?

लोकसभा चुनाव के परिणाम गुरुवार को आने हैं। लगभग सभी एग्जिट पोल में कहा गया है कि भाजपा को जीत हासिल होगी। कुछ पोल में तो मध्य प्रदेश में पार्टी को 29 में से 27 सीट मिलने का दावा भी किया जा चुका है। अगर पार्टी प्रदेश में वाकई इतना बढ़िया प्रदर्शन करती है तो इसका श्रेय किसे दिया जाएगा? प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान का दावा सबसे मजबूत है क्योंकि प्रचार अभियान के दौरान उन्होंने 140 से अधिक रैलियों को संबोधित किया। प्रदेश के बाहर की रैलियों को शामिल कर दें तो उन्होंने 220 से अधिक चुनावी सभाओं को संबोधित किया। लेकिन भाजपा के ही एक अन्य नेता और प्रदेश के नेता प्रतिपक्ष चौहान को पूरा श्रेय देने के मूड में नहीं लगते। उनका कहना है कि चौहान ने प्रदेश में 13 साल तक अच्छा शासन किया लेकिन इस बार भाजपा का प्रदर्शन अगर बेहतर रहता है तो ऐसा केवल प्रधानमंत्री मोदी की वजह से होगा।

मानव त्रुटि

एग्जिट पोल के नतीजे सामने आने के बाद से राजनीतिक दलों में अफरातफरी का माहौल है। परंतु इस बीच ऐसे वाकये भी सामने आ रहे हैं जिन्होंने सबको चकित कर दिया है। ऐसा ही एक उदाहरण तमिलनाडु में देखने को मिला जब एक सर्वेक्षण में कहा गया कि कमल हासन की मक्कल नीति मरियम पार्टी को कांचीपुरम संसदीय क्षेत्र में 3 से 6 फीसदी तक वोट मिलने का अनुमान जताया गया। दिक्कत यह है कि पार्टी उस सीट पर चुनाव ही नहीं लड़ सकी क्योंकि निर्वाचन आयोग ने उसके प्रत्याशी को इजाजत नहीं दी। इस सर्वेक्षण को जारी करने वाले टेलीविजन चैनल ने भूल स्वीकार करते हुए कहा कि यह मानवीय त्रुटि थी।

आपका पक्ष

स्वस्थ व्यक्ति से ही स्वच्छ समाज निर्माण

स्वच्छता, विकास और सामाजिक परिवर्तन तीनों का आपस में काफी घनिष्ठ संबंध है। एक विकसित समाज की पहचान का संकेतक समाज में स्वास्थ्य और स्वच्छता का स्तर भी है। किसी भी समाज में जहां लोग गंदगी में रहते हों और स्वास्थ्य के स्तर पर कमजोर हों उन्हें विकसित या सभ्य नहीं कहा जा सकता है। स्वास्थ्य का संबंध अनिवार्य रूप से स्वच्छता से जुड़ा हुआ है। इसलिए जहां स्वच्छता है वहीं स्वास्थ्य है और जहां स्वास्थ्य है वहीं विकास और प्रगति भी है। समाज में स्वास्थ्य का स्तर बेहतर नहीं होने पर स्वास्थ्य सुविधाओं पर राजस्व का एक बड़ा हिस्सा खर्च करना पड़ सकता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा मानव विकास सूचकांक के निर्धारण में स्वस्थ जीवन को भी एक संकेतक माना गया है। एक मानव के विकास का निर्धारण उसके स्वस्थ जीवन जीने के आधार पर किया जाता है। जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व सदियों से बताया जाता रहा है और यह एक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के विकास के लिए अत्यंत महत्त्व रखता है। वर्तमान में भी स्वच्छता को लेकर एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन छिड़ा हुआ है और यह अच्छी बात है कि इसका आगाज राजनीतिक क्षेत्र से हुआ है। यह सत्य है कि स्वास्थ्य और स्वच्छता राजनीतिक अवधारणा नहीं है लेकिन इस संदर्भ में स्वतंत्रतता आंदोलन के दौरान भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और उनके समर्थक लगातार लोगों को इस दिशा में जागरूक करते रहे।

दिव्यानी त्रिपाठी, गोरखपुर

देश में स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों में अंतिम व्यक्ति तक पहुंचनी चाहिए

उच्च रक्तचाप के लिए जागरूकता

वर्ल्ड हाइपरटेंशन लीग द्वारा हाइपरटेंशन दिवस हर साल 17 मई को मनाया जाता है। इस वर्ष इस लीग का मुख्य लक्ष्य हाइपरटेंशन अर्थात बढ़ते उच्च रक्तचाप के बारे में दुनिया भर के लोगों में जागरूकता लाना था। इसके तहत उच्च रक्तचाप के बारे में जागरूकता लाकर लोगों के इससे बचने के लिए प्रोत्साहित करना था। विश्व में 1.13 अरब लोग उच्च रक्तचाप से ग्रसित हैं और यह बीमारी तेजी से लोगों को अपनी चपेट में ले रहा है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर आठ में से एक व्यक्ति को यह बीमारी है। यह बीमारी बच्चों और किशोरों में भी देखने को मिल रही है। असंतुलित जीवनशैली उच्च रक्तचाप होने की दूसरी प्रमुख वजह है। रिपोर्ट के अनुसार पुरुषों के मुकाबले महिलाएं अवसाद से अधिक ग्रस्त हैं। हाइपरटेंशन के बारे में लोगों को खासकर ग्रामीण लोगों को जानकारी नहीं हैं। इसलिए वे इस बीमारी को गंभीरता से नहीं लेते हैं। इससे शरीर को नुकसान पहुंचता है तथा शरीर में रक्त संचरण ठीक से नहीं हो पाता है जिससे हृदय और इससे जुड़ी अन्य बीमारियां होने लगती हैं। हृदय रोग का इलाज महंगी होने से लोग इलाज नहीं करा पाते हैं। अत: इस ऐसी बीमारी से बचने के लिए जागरूकता जरूरी है। सरकार को विज्ञापनों के माध्यम से जागरूकता अभियान चलाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों के सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों की नियुक्ति कर लोगों का उचित इलाज करना चाहिए।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।